# सूफ़ी तबला कव्वाली की धुन

**अमीना चिश्ती**

**"कब, क्यों, कैसे,** कहां और खुद अपने आप से, अपनी खुदी की तलाश ने मुझे जीवन की उस कग़ार पर लाकर खड़ा कर दिया जहां मुझे उन तमाम चीज़ों को अलविदा कहना पड़ा जिन्हें मैं अब तक जीवन का सरमाया समझ रही थी। ज़िंदगानी की समझ बनाने की इस कोशिश में मैं इतनी रम गई कि मेरा वास्ता बस उन्हीं चीज़ों से रह गया जो मेरे दिन को सुकून दे रही थीं। मैं एक बंधी हुई नौकरी नहीं करना चाहती थी, अपनी स्कूल की पढ़ाई में दिल नहीं लगा पा रही थी। यहां तक कि अपने प्रिय खेल फुटबाल से भी मैं दूर हो गई थी। मेरे कदम अब उस रहस्यमयी और अनजानी डगर पर चल पड़े थे जहां डर की जगह विश्वास, दर्द की जगह शुक्रगुज़ारी और छीनने की जगह समर्पण ही मुझे भाने लगे थे। यही वो वक्त था जब मेरे जीवन का रुख ध्वनि के ज़रिए भक्ति की अभिव्यक्ति की ओर मुड़ गया। मेरे पास अब सुनने का वक्त था, ज़ेहन में एक सुकून था— मैं एक सूफ़ी बने लगी थी। हालांकि अब तक भी मैं दिल-दिमाग और आत्मा को राहत पहुंचाने में ध्वनि की शक्ति से अनजान थी। फिर भी सूफी फ़लसफ़ा मुझे रिझाने लगा था।

1900 के शुरूआती वर्षों में हज़रत इनायत ख़ान के फ़लसफ़े का भारत में काफ़ी बोल बाला था। हज़रत को चाहत थी कि वे लोगों की आत्मा को अमन, प्यार और सद्भाव की भावना से सराबोर कर दें। उनका मानना था कि आत्मा का जन्म एक अंधे कुएं में होता है और धीरे-धीरे हम अपनी अच्छाई से इस आत्मा की आंखें रोशन कर देते हैं।

हज़रत इनायत ख़ान की इसी सीख ने मुझे पहचान और इंसानियत का पाठ पढ़ाया। मैं खुद से और अपने आस-पास के लोगों के साथ एक सतत जीवन जीने के तरीक़े सीखने लगी। इन्हीं समान सोच रखने वाले साथियों ने मुझे मेरे शहर ओरेगॉन में बसे चिश्ती समुदाय से मिलवाया। यही मैंने इस्लाम धर्म को अपनाते हुए अपना नया नाम पाया-अमीना चिश्ती।

नए नाम के साथ जीवन की भी एक नई शुरुआत हुई। मैंने एक सादा जीवन अपनाकर कुछ पैसे बचाना शुरू कर दिया जिससे मैं भारत की यात्रा कर सकूं। पर सबसे पहले मैं ग़रीब नवाज़ हज़रत मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर ज़ियारत करना चाहती थी जिन्होंने हिन्दू मुसलमानों के बीच भाईचारे की बात की थी। उन्होंने अपने चेलों को नदी की तरह उदार, सूरज की तरह मुहब्बत बांटने और धरती की तरह मेहमान नवाज़ी विकसित करने की ताकीद की थी। ईरान से भारत आने वाली हज़ारों साल पुरानी इस सूफ़ी परम्परा की एक प्रमुख रवायत का नाम है 'समा' जिसके मायने हैं सुनना और याद करना। इस परम्परा शैली में

*साथी तबला नवाज़ों के साथ अमीना*

नाचना, गाना, वाद्य बजाना, कविता और कव्वाली गाना शामिल होता है। कव्वाली की परम्परा इसी सूफ़ी रवायत की देन है। लगभग 800 साल पुरानी इस कव्वाली परम्परा शैली ने संगीत के माध्यम से इस्लाम धर्म का प्रचार किया है। मैंने सबसे पहले कव्वाली का लुत्फ़ अपनी एक दोस्त द्वारा नुसरत फतेह अली खान साहब द्वारा गाई कव्वाली पर उठाया। इस कव्वाली को बार-बार सुनते-सुनते मैंने अपने अंदर एक सैलाब सा महसूस किया जिसने मेरे पूरे वजूद को झकझोर कर रख दिया। यह कव्वाली सूफ़ी संत फ़रीदुद्दीन गंजशकर, जो चिश्ती मत के अग्रणी प्रचारक रहे हैं की शान में संगीतबद्ध की गई थी। फ़रीदुद्दीन ने पंजाबी भाषा का इस्तेमाल करके आम लोगों के बीच अपने विचारों का प्रचार किया जिसके नतीजतन पंजाबी साहित्य और संस्कृति फली-फूली।

ख़ैर पैसे जमा करने के बाद मैं तीन हफ़्तों के लिए भारत आई और दिन-रात हज़रत मोइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर दरवेशों के साथ समय बिताया। मेरा अगला पड़ाव कव्वाली संगीत की जन्म भूमि पाकपट्टन शरीफ़, पाकिस्तान था। यहां बाबा फरीद की मज़ार भी है जहां यह माना जाता है कि हर आने वाले की मुराद पूरी होती है। इस मज़ार पर औरतों के जाने पर पाबंदी है परन्तु पाकिस्तान की वज़ीरे आज़म, बेनजीर भुट्टो ने इस परम्परा को तोड़कर औरतों के लिए यहां ज़ियारत करने का रास्ता खोल दिया।

सन् 2002 तक मैंने कई ऐसी जगहों का सफ़र कर लिया था जहां एकता और सद्भाव तथा सर्व-धर्म सम्भाव का अनूठा माहौल मुझे देखने को मिला था। अमृतसर का स्वर्ण मंदिर, वाघा बार्डर और अनेकों जगहों पर लोगों से मिलकर मैंने जाना की कव्वाली ज़्यादातर लोगों को बहुत प्रिय है। इस दौरान मैंने बनारस के एक तबला नवाज़ से छः महीने तक तबले की तालीम भी हासिल कर ली थी। मैंने जान लिया था कि कव्वाली परम्परा में भारतीय संगीत की कई शैलियों के विविध पहलुओं का समागम है। फारसी, ठेठ हिन्दी, पंजाबी, सराइकी, उर्दू भाषाओं के साथ-साथ कव्वाली में लोक संगीत परम्परा 'काफ़ी' और पारम्परिक संगीत शैली के 'राग' सिद्धान्तों का मिश्रण पाया जाता है। इस सम्मिश्रण के कारण ही इसे अनेक बोली, भाषा और क्षेत्रों में बसने वाले लोग पसंद करते हैं।

वैसे तो कव्वाली गायन सूफी संतों की बरसी पर होने वाले 'उर्स' के दौरान किया जाता है जब आत्मा और खुदा का मेल होता है और नश्वर शरीर खाक़ में मिलकर पाक रुह ईश्वर में लीन हो जाती है। 'उर्स' तीन दिनों व तीन रातों तक लगातार चलता रहता है। अपनी 'हाज़िरी' दर्ज करने अनेक कव्वाल 'उर्स' में शिरकत करते हैं। मेरे उस्ताद दिलदार हुसैन बताते हैं कि जब वे 'उर्स' में गाते हैं तो वे आत्मा-परमात्मा के मिलन का जश्न मानते हैं। इस समय उनके भीतर एक अनोखी ऊर्जा का संचार होता है जिसके आगे लोगों की मौजूदगी, खुशी, गम, पैसा, नाम सब बेमानी लगते हैं।

मुझे याद है जब मैं पाकपट्टन गई थी। मेरा दिल ज़ोरों से धड़क रहा था और कव्वाली का संगीत मेरे कानों से मेरी नसों में बहने लगा था। मैं तल्लीन होकर नाचने लगी और मुझे पता ही नहीं चला कि मैं कितने घंटों तक नाचती रही। लोगों ने मेरे ऊपर पैसे फैंके; कई बच्चे, बूढ़े, जवान, मर्द-औरत मेरे साथ नाचने लगे। ऐसा पूरी रात चला। एक के बाद एक कव्वाली गाने वालों की टोली गाती रही और मैं मुग्ध होकर उसमें खोती चली गई। उस रात मैंने जो भी देखा और अनुभव किया उसने मुझे कव्वाली तबला गायिका बनने की प्रेरणा दी।

'उर्स' में कव्वाली गायन

*सभी फ़ोटो- अमीना चिश्ती*

अब मैंने पाकिस्तान में रहकर स्थानीय उस्तादों और कव्वालों से सीखना और उनके साथ गाना-बजाना शुरू कर दिया। वहां की मेहमान नवाज़ी गज़ब की थी, ऐसा लगा जैसे मैं किसी बड़े समुदाय का हिस्सा बन गई हूं। उन्होंने मुझे चिश्ती विरासत में एक बहन की तरह स्वीकार कर लिया। हरेक

परिवार के तबला नवाज़ घंटों मेरे साथ रियाज़ करते थे। मुझे लगा मेरी साधना पूरी होने लगी थी।

कुछ ही दिनों बाद मशहूर सूफ़ी संत अली हुजविरी दाता गंज बख्श के 'उर्स' का आयोजन होने वाला था। मेरे साथी कव्वालों ने मुझे उसमें शामिल होकर वहां मशहूर उस्ताद कव्वालों से मिलने का मौका प्रदान किया। मैं लाहौर पहुंची— जहां मेरी मुलाकात नामचीन कव्वाल मंडली शेर मेहर अली के बेटे के साथ हुई। निवेदन करने पर उन्होंने मुझे अपने उस्ताद दरवेश वालिद तथा अनेक मशहूर कव्वालों से मिलवाया।

बारह वर्ष गुज़र चुके हैं पर इन सभी बातों को दोबारा याद करते हुए मुझे एक सुखद अनुभूति का एहसास होता है। अब मैं अपने उस्ताद गुरु दिलदार हुसैन, जिन्होंने मुझे अपना शार्गिद बना लिया है, के साथ कव्वाली परम्परा की रवायत को देश-विदेश में लोगों के साथ बांटती हूं। लोग मुझे कव्वाली तबला शैली चलाने वाली पहली महिला फ़नकार के नाम से जानते हैं। उस्ताद दिलदार हुसैन ने तीस वर्षों तक महान कव्वाली गायक नुसरत फतेह अली ख़ान के साथ गाते बजाते बिताए हैं। उसी परम्परा को उस्ताद दिलदार हुसैन आगे ले जा रहे हैं। मैं खुशनसीब हूं की मैं भी इसी विरासत का हिस्सा बन पाई हूं।

कव्वाली-तबला परम्परा की सबसे अनोखी बात यह है कि इसमें पारम्परिक शैली और समकालीन संगीत का संगम देखने को मिलता है। इसमें गाए जाने वाली सूफ़ी नज़्में, गज़लें और गीत रूह को सकून और दिल को खुदा की बंदगी में पूरी तरह सराबोर कर देने की कशिश रखती हैं। मैं खुद को बहुत खुशनसीब मानती हूं जिसे इस संगीत परम्परा को सीखने, समझने और महसूस करने का मौका मिला है।"

**अमीना चिश्ती** *कव्वाली-तबला शैली में गाने वाली पहली फ़नकार है। यह लेख उन्होंने खुद लिखा है।*